

हिन्दी साहित्य में भक्ति का स्वरूप—विवेचन

डॉ. श्रीकांत मिश्र

हिन्दी विभाग

स्वामी शुकदेवानन्द कॉलेज, शाहजहाँपुर

डॉ. कमलेश मिश्र

उप—प्राचार्य

वीरांगना अवन्तीबाई महाविद्यालय, शाहजहाँपुर

मनुष्य संसार के राग से मुक्त नहीं हो सका तो उसने अपने राग को परम सत्ता की ओर उन्मुख कर दिया। परम सत्ता की ओर उन्मुख प्रेम ही भक्ति के स्वरूप में स्थित हुआ। मनुष्य सुख—दुःख भय एवं संसार से बंधा रहता है और इस कारण वास्तविक सुख अर्थात् परमानन्द का उपभोग नहीं कर पाता। परमानन्द का स्रोत सतचित परमानन्द परमेश्वर है। उसी के साथ रहने, उसका गुणगान करने उसी में संलग्न रहने और समस्त छन्दों से सदा के लिए मुक्त होने से परमानन्द प्राप्त होता है। शाश्वत् परमानन्द की प्राप्ति का यह साधना पथ ही भक्ति मार्ग कहलाता है “परमानन्द धाम परमात्मा की गोद में बैठकर या उसको गोद में लेकर भक्त आनन्दमय हो जाता है, परमात्मा के प्रति उसके मन में पराकाष्ठा की रति है। उस भावना से ओत—प्रोत होने पर अपने को अमर पाता है। भक्ति असल में स्नेह स्वरूपा और अमृत स्वरूपा है। वह निष्काम भावना से भरपूर है। आनन्द भी उसमें निहित है। यह अनन्य प्रेम भक्त और ईश्वर के पारस्परिक प्रेम से पोषित होता है। सम्पूर्ण आत्म समर्पण से भक्त अपने को भगवान के विशेष प्रेम या कृपापात्र के रूप में सिद्ध कर देता है। परमात्मा हमेशा अपने भक्त के आधीन रहता है। यह ठीक है कि भक्ति साधना मानव को परमेश्वरत्व प्रदान करने वाली है।

कर्म ज्ञान एवं भक्ति मुख्य साधना मार्ग है। सांसारिक बन्धनों से छुटकारा पाने के साधनों अथवा तरीकों को योग की संज्ञा से अभिहित किया गया। इस प्रकार धार्मिक जगत में



कर्म योग योग, ज्ञान योग और भक्ति योग प्रसिद्ध हुए। मानसिक संयम पर आधारित राजयोग को भी कुछ लोग प्रमुख साधना पथ मानते हैं। मानसिक संयम उपरोक्त तीनों साधना मार्गों के लिए अपेक्षित है। अतः हम राजयोग को अलग-अलग साधना पथ मानने के पक्ष में नहीं हैं। कर्म योग और ज्ञान योग भक्ति योग के अंग मात्र हैं। ज्ञान, ध्यान एवं निदिध्यासन पर आधारित है। भक्ति योग में ईश्वर को यथार्थ परम सत्य मानकर उसी पर दत्तचित्त रहना अपेक्षित है। वासनाओं का अन्त किये बिना असली ज्ञानवर्धक असंभव है। निष्काम भावना से प्रेरित कर्मानुष्ठान ही वासनाओं को दबाकर ज्ञान का पोषण कर सकता है। स्वार्थ से प्रेरित होकर समस्त वैदिक कर्मों का अनुष्ठान करने से ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। असल में निष्काम कर्म ईश्वर विषयक ज्ञान की वृद्धि में और वह ज्ञान सच्ची भक्ति की प्राप्ति में सहायक बन जाता है। भक्ति साधना आनन्दधाम परमात्मा से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कराती है। अतः हम भक्ति मार्ग को अन्य साधना मार्गों की अपेक्षा श्रेष्ठ मानते हैं। इसमें चरम आदर्श, परम सौंदर्य एवं परम सत्य की उपासना करने की सुविधा है।

भक्ति भावना को दृढ़ कर देने वाले साधनों में परमात्मा का सहारा लेते हुए विभिन्न कर्तव्यों का अनुष्ठान, उसके प्रति श्रद्धा, तप, संयम एवं व्रत के द्वारा भोगों का त्याग, अहिंसा, आस्तेय, अपरिग्रह, सत्य, ब्रह्मचर्य आदि का सेवन, विशयों से निवृत्त होकर मन को अध्यात्म के रास्ते पर चलाना, निर्मलता प्राप्त करना, समस्त कामनाओं को ईश्वर पर केन्द्रित करना आदि प्रमुख हैं। ये भक्ति योग के अंग माने जाते हैं। कुछ लोग भोग की सामग्री प्रदान करने वाले देवताओं को लक्ष्य करके किये जाने वाले यज्ञ को भी भक्ति के अंगों में स्थान देते हैं। अर्चना प्रधान भागवत भक्ति में यज्ञानुष्ठान को कोई विशेष महत्व नहीं दिया जाता। अतः हम यज्ञ को भक्ति का एवं आत्म समर्पण की भावनाओं की उपज मानते हैं। अतः हम यज्ञ को भक्ति का आवश्यक अंग मानने के पक्ष में नहीं हैं। भक्ति के प्रमुख साधन भगवान के साक्षात्कार में सहायक सिद्ध होते हैं। साक्षात्कार भक्त के लिए मृत्यु के परे की ले जाने में सहायक सिद्ध होता है। साक्षात्कार भक्त के लिए मृत्यु के परे की अमृतावस्था है। इस अवस्था में भक्त ईश्वर की स्तुति, महिमा गायन, प्रपत्ति आदि भावनाओं से ही ओत-प्रोत रहता है।

यह भावनाएं भजन, नामजप, अभिषेक, आत्मज्ञान, आत्म दमन नैवेद्य के आस्वादन आदि की प्रेरक बन जाती है। भक्ति के साधनों की यह विशेषता है कि वे भक्त और ईश्वर में अभेद भावना पैदा करते हैं। यह भगवान के व्यक्तित्व का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने में सहायक होती है। भक्ति के विभिन्न साधनों का प्रयोग करके भक्त अपनी आसुरी वृत्तियों को हटाते हैं और

दिव्यता प्रदान करके परमात्मा से मिलाने वाली शक्तियों को जागृत कर देते हैं।

भक्ति साधन और साध्य दोनों हैं प्रभु की प्राप्ति में भक्ति अन्तिम सीढ़ी है तो भक्ति योग के अंग उसके पहले की सीढ़ियाँ हैं। ज्ञान कर्म योग आदि समस्त साधन भक्ति के पोशक मात्र हैं। भक्ति फलस्वरूपा है। भक्ति मार्ग ज्ञान निरपेक्ष भी हो सकता है। प्रेम मूलक भक्ति से यदि ज्ञान उत्पन्न होता है। तो वह लीला प्रवेश का साधक है। आचार्यों ने इस लिए भक्ति के फल के रूप में भक्ति को ही माना है। नारद ने भक्ति को शान्ति रूपा एवं परमानन्द रूपा बताई है। शान्ति और परमानन्द साक्षात् भगवान के स्वरूप की विशेषताएँ हैं। भगवान का प्रेम ही शान्ति और परमानन्द में परणित होता है। शाण्डिल्य ने भक्ति को ईश्वर भाव प्रधान या ऐश्वर्य परा और आत्मिक परा माना है। उनके अनुसार आत्मतत्त्व और ईश्वरत्व दोनों भक्ति के अन्तर्गत हैं। बल्लभ, निम्बार्क आदि आचार्यों की माधुर्य परा भक्ति शाण्डिल्य की आत्मैक परा भक्ति से भिन्न नहीं है। असल में शाण्डिल्य ने इन दो तत्वों का उल्लेख करके साधना और साध्य दोनों भक्ति के अन्दर समाविष्ट किया है। ईश्वर भाव परायण साधना के द्वारा भक्त बन जाना ही बड़ी सिद्धि है। इस अवस्था में जीवन समस्त क्षोभों से हीन और शान्तरूप हो जाता है।

भागवत में भक्ति को दो रूपों विभाजित किया गया है— सगुण और निर्गुण। भगवान के प्रति सगुण भक्तों की अनुरक्ति एक अनुपम आसक्ति है जो चकित एवं विकार रहित कर देने वाली है। मानव जाति में सुलभ प्रेम सम्बन्धों से तुलना करके इस अलौकिक आसक्ति को स्पष्ट करने के प्रयास हुए हैं। भागवत भक्त भगवान की नित्य उपासना में मग्न होकर रहना ही अपना लक्ष्य मानते हैं। वे अद्वैतवादियों की तरह परमात्मा के स्वरूप में समा जाने की इच्छा नहीं रखते। भक्ति में प्रविष्ट कर देने वाली भावनाओं के आधार पर सगुण भक्तों के तामस राजस और सात्विक तीन दल विख्यात हैं। निर्गुण भक्तों के परमात्मा उनके हृदयों में निवास करते हैं। आराध्य के गुणों का श्रवण होने पर वे निष्काम भाव से प्रेम पूर्वक उन पर लगे रहते हैं। निर्गुण भक्त भी अनन्य प्रेम के साथ निरंतर ध्यान और सेवा करना ही चरम लक्ष्य मानते हैं। भक्त परमेश्वर की भक्ति के लिए मोक्ष तिरस्कार करते हैं। भक्ति की साध्यावस्था यहां भी प्रकट होती है। साध्य रूपा भक्ति में आस्था रखने वाला सर्वश्रेष्ठ और महत्वपूर्ण है क्योंकि उसका तन, मन, धन सब कुछ परमेश्वर हो जाता है। प्रभु के रूप में वह परम प्रेम को ही प्राप्त करता है सच्चे भक्त को निर्गुण और सगुण ब्रह्म का भेद नहीं दृष्टिगत होता भक्त पंचेन्द्रियों के द्वारा जब निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है तब वह उन्हें सगुण ब्रह्म के रूप में ही दर्शन देता है। सगुण—निर्गुण होकर विराजमान परमेश्वर ही साधन रूप में



भक्ति का साध्य है। साध्यावस्था में भक्ति के साधन ज्ञानयोग, कर्मयोग आदि हैं।

स्वतन्त्रता, पवित्रता, विश्वबन्धुत्व की भावना तथा प्रभु प्राप्ति भक्ति के फल बतलाये जाते हैं। जीव प्रकृति के प्रपंच में फंसा है। वह सदा स्वाधीनता की भावना से प्रेरित रहता है। इन्द्रिय विषयक, संसार तथा उसकी विभूतियां मानव को ईश्वर से वंचित कर देने वाली हैं। जब वह अनुभव करता है कि आध्यात्मिक जीवन ही शाश्वत एवं स्वतन्त्र है। समस्त कर्मों को परमात्मा की इच्छा के समक्ष अर्पित करना ही मुक्ति का सफल उपाय है। भक्त जब अहंकार छोड़कर शराणागति की भावना ग्रहण करता है तब उसे परमेश्वर के दर्शन होते हैं। प्रभु परायणता या भक्ति उसे स्वतन्त्र वातावरण में विचरण करने देती है और वह स्वतन्त्र हो जाता है।

जगत का सम्बन्ध मनुष्य को मलिन कर देने वाला है। सतोगुण से गिरकर जीव रजोगुण एवं तमोगुण के कष्टमय एवं वीभत्त्व अनुभवों को भोगता है। ये सारे अनुभव पराधीनता के परिचायक हैं। इस स्थिति में सत्य और असत्य का भेद करके मनुष्य सत्य को ग्रहण करता है। सत्य का साक्षात्कार उसे पवित्र कर देता है। परमेश्वर ही साक्षात् सत्य स्वरूप है। उसके गुणों के स्मरण, कीर्तन एवं भजन द्वारा भक्त अपनी अपवित्रता बहा देता है। भक्त के जीवन में पवित्रता के चिन्ह प्रत्यक्ष होते हैं। परमात्मा को छोड़कर किसी दूसरे से भक्त सम्बन्ध नहीं रखता। व्यक्तिगत बोध को मिटाकर वह अचल भक्ति के द्वारा भगवान से तादात्म्य स्थापित करता है। तब प्रकृति की प्रत्येक वस्तु भक्त को पवित्र एवं आनन्दमय दिखाई देती है। तीर्थाटन, जनसेवा तथा दूसरों का पथ-प्रदर्शन भक्त की पवित्रता बढ़ाते हैं। उसके संग आने वाले जड़ मनुष्य भी पवित्रता प्राप्त करते हैं। वाल्मीकि जो अत्यन्त मूर्ख थे, भक्ति के द्वारा महान साधक, कवि और उपदेशक बन गये।

विश्वबन्धुत्व की भावना भक्ति का तीसरा फल है। पवित्रता प्राप्त होने पर मानव का तमोगुण और रजोगुण परिवर्तित होकर सतोगुण की स्थिति प्राप्त करते हैं। इस स्थिति में राग द्वेष का भक्ति के संसार में कोई स्थान नहीं।

स्वार्थपरता का नामोनिशान भी उसके आचार, विचारों में नहीं दृष्टिगत होता। सभी चराचरों को अपने भगवान की संतानें मान लेता है। सम्पूर्ण विश्व को वह बन्धुत्व के बन्धन में बांध देता है और अपनी भावनाओं को विशाल बनाकर सबको उसके अन्दर समेट लेता है। भक्त और किसी का नहीं भगवान का है। मानव समाज की सेवा के द्वारा वह भगवान की ही सेवा करता है। नारद ने कहा है कि जाति, सभ्यता, सुन्दरता, धन या सम्पत्ति के आधार पर

कोई भेद भावना भक्तों के संसार में नहीं चलती। भक्त चौराहे के दीपक के समान है। वह सबके लिए जलता है और उसके प्रकाश से लाभ उठाने का अधिकार भी सबका है। भक्तों के ईष्ट देवता अनन्त संसार के प्रतिनिधि बन जाते हैं।

भगवान की प्राप्ति भक्ति के फलों में सर्वप्रमुख है। भक्त परमेश्वर के बिना नहीं रह सकता है। उनके दर्शन न होने पर वह बेचैन हो उठता है। अतः रक्षक के रूप में भगवान को प्राप्त करना चाहता है। दही में विद्यमान मक्खन की तरह यद्यपि भगवान भक्त के अन्दर उपस्थित है तो भी भक्ति साधना रूपी मंथन के बिना प्रकट नहीं होते। भगवान की निकटता का बोध जागृत करने में भक्ति सफल उपाय है। मर्त्य के भौतिक तथा जड़ अंशों की भक्ति दिव्यता से ओत-प्रोत कर देती है। भक्ति के साधनों में पवित्र कर देने की शक्ति निहित है और वे भक्त को प्रभु के साथ विदा देते हैं। जड़ वस्तुएँ तथा मूर्तियाँ भक्ति के प्रभाव में आकर चैतन्यमय तथा आध्यात्मिक बनकर प्रभु की सेवा का रूपान्तर मात्र है। इस कारण प्रभु मिलन में वह सबसे उपयोगी सिद्ध होती है।

आचार्यों ने प्रभु प्राप्ति का महत्व एवं स्वभाव व्यक्त किया है। नारद के अनुसार जैसे गूंगा गुड़ खाकर उसका महत्व बता देने में असमर्थ होता है वैसे ही भक्त परमेश्वर की प्राप्ति का सुख नहीं बतला सकता। प्रभु मिलन का आनन्द अवर्णनीय है। भक्ति परमेश्वर से अलग करने वाले बन्धनों को तोड़कर मिलन उपस्थित कर देती है दिव्यता के स्रोत से जुड़कर मनुष्य स्वतन्त्र प्रेम सम्पन्न एवं धन्य बन जाता है। नष्ट शरीर के नष्ट होने से पहले भौतिक जीवन में ही परमात्मा-मिलन का आनन्द प्राप्त करना ही परम श्रेय की बात है। इस परमात्मा प्राप्ति को आचार्यों ने परम गति, अति मृत्यु, मुक्ति विलय, मोक्ष स्वरूप व स्थान अपवर्ग अमृतावस्था परम धाम या निर्वाण कहा है। ये शब्द प्रभु प्राप्ति के बारे में दार्शनिक जगत में प्रचलित मतांतरों को स्पष्ट करते हैं। कुछ आचार्यों के अनुसार परमेश्वर प्राप्ति परमात्मा और भक्त का पारस्परिक विलय हो जाना है। इसके विपरीत दूसरे आचार्य परमात्मा प्राप्ति को परमात्मा के साथ साख्यभाव प्राप्त करना मानते हैं। भागवतों ने परमेश्वर मिलन सम्बन्धी चर्चाओं में प्रभु और भक्त को एक दूसरे से पर्याप्त दूरी रखने का प्रयास नहीं किया है। भक्त यदि चाहे तो सदा अपने व्यक्तित्व का पालन कर सकता है लेकिन वह परमात्मा में विलीन होने का भी अधिकारी है। यदि इच्छा है तो वह इस अधिकार का भी प्रयोग भी कर सकता है। अधिकांश भागवत भक्त विलय नहीं निरंतर सेवा का वरदान ही चाहते थे। वे गुड़ खाने के लिए इच्छुक थे परन्तु गुड़ बनना पसन्द नहीं करते थे।



बौद्धों के निर्वाण सिद्धान्त के अनुसार जैसे दीपक के बुझ जाने पर शून्य ही शून्य रहता है वैसे ही वासनाओं का नाश हो जाने पर मुक्ति प्राप्त हो जाती है। आचार्य शंकर ने प्रारब्ध कर्म के क्षय होने पर शरीर के मुक्त होकर पतन का अवस्था को प्राप्त करना ही मोक्ष माना है। समस्त विश्व को उन्होंने मिथ्या बताया है। जीवन और उसके मूल्य की दृष्टि से देखने पर ये दोनों मत महत्वपूर्ण नहीं सिद्ध होते यदि हम विलय सिद्धान्त को मानेंगे तो स्वतन्त्रता, पवित्रता, आनन्द का उपभोग एवं प्रेम परायणता निरर्थक बन जाती है। प्रेमी-प्रेमिकाओं का मिलन होता है लेकिन एक दूसरे में विलय नहीं हो पाता। विलय सिद्धान्त प्रेम की कसौटी पर कसकर ठीक नहीं उतरता। दैवीय प्रेम में भी जीव प्रभु परमेश्वर से प्रभावित हो जाता है परन्तु उसमें नहीं समा जाता। पृथक् अस्तित्व रखते हुए वे भक्त परमात्मा मिलन में परमानन्द का अनुभव प्राप्त कर सकते हैं। लीला में परमात्मा के निकट सखा भाव अपनाते हुए जीव उपस्थित रहता है। अपवर्ग और परमधाम प्रयोग भी विलय सिद्धान्त का समर्थन नहीं करते। वर्ग से एकान्तिक अवस्था या ब्रह्म को प्राप्त करना अपवर्ग है ब्रह्म भाव के अतिरिक्त बाकी सब वर्ग वाली भावनाएँ हैं। ये राग-द्वेषमयी होने के कारण दुःख का निमित्त बनती है। ब्रह्म मभाव को प्राप्त करके भक्त दुःख निवृत्त हो जाता है। परम धाम या स्वर्ग आनन्द का निकेतन है। आनन्द की प्राप्ति उसके उपभोक्ता के अस्तित्व को सिद्ध कर देती है। मोक्ष की दशा में परमात्मा को प्राप्त करके भक्त उनके समान रूप वाला या अभिन्न बन जाता है। यही अति मृत्यु की स्थिति है। जन्म मरण के स्वभाविक दुःख उसे नहीं सताते। वह अमृतस्वरूप भगवान की तरह अमृता अवस्था में रहता है। देश और काल की सीमाओं का वह उल्लंघन कर जाता है। यही उसके देवत्व की स्थिति है। जो परमेश्वर की विषेशता है। परमात्मा और मुक्तावस्था के भक्त परस्पर प्रेम से बंधे हुए और साथ रहने वाले हैं।

संदर्भ

- सूर विनय पत्रिका, गीता प्रेस गोरखपुर।
- प्रसाद, डॉ. नारायण, 'भक्ति काव्य की दार्शनिक चेतना।
- श्रीरामचरित मानस, गीता प्रेस गोरखपुर।
- जॉर्ज, डॉ. एम. 'भक्ति आन्दोलन और साहित्य।